वर्ष-62 अंक-01 ❖ जनवरी 2019 (कुल पृष्ठ-20) प्रति अंक : मूल्य ₹ 10/-

समन्वय-संस्कृति का उद्‌गाता

मंगल प्रभात

भारत की सांस्कृतिक विरासत

मेरा यह कहना नहीं है कि हम शेष दुनिया से बचकर रहें या अपने आसपास दीवारें खड़ी कर लें। यह तो मेरे विचारों से बड़ी दूर भटक जाना है। लेकिन मैं यह जरूर कहता हूं कि पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें। दूसरी संस्कृतियों के सम्मान की, उनकी विशेषताओं को समझने और स्वीकार करने की बात उसके बाद ही आ सकती है, उसके पहले कभी नहीं। मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी मूल्यवान निधियां हैं, वैसी किसी दूसरी संस्कृति में नहीं हैं। हमने उसे पहचाना नहीं है; हमें उसके अध्ययन का तिरस्कार करना, उसके गुणों की कम कीमत करना सिखाया गया है। अपने आचरण में उसका व्यवहार करना तो हमने लगभग छोड़ ही दिया है। आचार के बिना कोरा बौद्धिक ज्ञान उस निर्जीव देह की तरह है, जिसे मसाला भरकर सुरक्षित रखा जाता है। वह शायद देखने में अच्छा लग सकता है, किन्तु उसमें प्रेरणा देने की शक्ति नहीं होती। मेरा धर्म मुझे आदेश देता है कि मैं अपनी संस्कृति को सीखूं, ग्रहण करूं और उसके अनुसार चलूं; अन्यथा अपनी संस्कृति से विच्छिन्न होकर हम एक समाज के रूप में मानो आत्महत्या कर लेंगे। किन्तु साथ ही वह मुझे दूसरों की संस्कृतियों का अनादर करने या उन्हें तुच्छ समझने से भी रोकता है। *यंग इंडिया, 1-9-'21*

–गांधीजी

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा

1, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली-110002

5-6 जनवरी, 2019

Postal R.No.DL(C)-01/1242/2018-20
मंगल प्रभात मासिक RNI-813/57

इस अंक में

1. कनकदास —काका कालेलकर 03

2. खादी का दर्शन —विनोबा भावे 06

3. गंगनाथ विद्यालय में काकासाहेब —रवीन्द्र केलेकर 08

4. गांधीजी की आर्थिक दृष्टि —प्यारेलाल 14

5. हिमांशु जोशी : मेरे मित्र एवं मार्गदर्शक —प्रमोद कुमार अग्रवाल 16

6. गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा द्वारा 1-2 दिसम्बर, 2018 को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी की रपट —प्रो. रमेश भारद्वाज 17

इस मास से मंगल प्रभात के प्रत्येक अंक का **e-paper** गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य की वेबसाईट **www.ghsssannidhi.org** पर उपलब्ध होगा।

'मंगल प्रभात' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं। उनके साथ मंगल प्रभात के सम्पादक का या संस्था की कार्यसमिति के सदस्यों का सहमत होना जरूरी नहीं है।

सम्पादक : **प्रो. रमेश भारद्वाज**

सम्पादकीय सलाहकार : **मोहिनी माथुर एवं कृष्णा शर्मा**

वार्षिक चन्दा : ₹ 100/- **पंचवर्षीय** : ₹ 500/-

एक प्रति : ₹ 10/- **दस वर्षों के लिए** : ₹ 1000/-

कनकदास

✍ काका कालेलकर

कुदरत में नैतिक नियमों के तथा भौतिक नियमों के बीच सम्बन्ध होना ही चाहिए, ऐसी श्रद्धा मनुष्य के हृदय में है। यह श्रद्धा सब देशों में होती है और सब कालों में होती है। प्रज्ञा के अभाव में मनुष्य इन दोनों का सम्बन्ध विचित्र ढंग से जोड़ना चाहता है और उससे अनेक तरह के अन्धविश्वास पैदा होते हैं। मनुष्य यदि झूठ बोले और कुछ ही देर में उसे ठोकर लगे, तो तुरन्त उसका यह कहने का मन हो जाता है : "देखा, पाप का परिणाम! अभी दुनिया में सत्य जीवित है।" पंजाब का लेफ्टिनेन्ट गवर्नर यदि लाला लाजपतराय को देश-निकाले की सजा देकर ब्रह्मदेश में भेज दे और यदि थोड़े ही दिनों बाद वह गवर्नर मर जाए तो लोग जरूर कहेंगे : "जाएगा कहाँ? साधु आदमी को परेशान करना कोई आसान बात है क्या?" पुराणों में भी कितने ही पात्र हाथ में जल लेकर कहते हैं कि "यदि आज तक मैं कभी असत्य न बोला होऊं, अथवा आज तक मैं पूर्ण ब्रह्मचारी रहा होऊं, तो आकाश में सूर्य रुक जाए अथवा मृत ब्राह्मण जीवित हो जाए।"

हम इतना ही कहेंगे कि इसके पीछे की श्रद्धा तो सच्ची है, परंतु प्रज्ञा के साथ उसका योग नहीं है।

पश्चिम समुद्र के किनारे मालपे नामक बन्दरगाह के पास उड़पी नाम का एक वैष्णव-क्षेत्र है। भक्ति-योग-धुरन्धर श्री मध्वाचार्य के कारण यह स्थान विशेष प्रसिद्ध हो गया है। कोई व्यापारी द्वारका से नौका में कीमती माल भर कर दक्षिण की ओर जा रहा था। मालपे बन्दरगाह के पास उसकी नौका आई और सागर ने रौद्र रूप धारण किया। मल्लाहों ने जी-तोड़ प्रयत्न किया, लेकिन बचने का कोई रास्ता मिल नहीं रहा था। समुद्र की एक उत्ताल तरंग मानो मौत की भूखी जीभ बन रही थी। किनारे पर खड़े एक महापुरुष ने यह भयंकर दृश्य देखा। उनके हृदय से कारुण्य की सरिता बह निकली। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की, "प्रभो, इन अनाथों की सहायता कर इन्हें बचा ले।" एक क्षण में समुद्र शान्त हो गया, मानो किसी वीतराग योगी की ही मुखमुद्रा उसने धारण कर ली हो। नौका सही-सलामत किनारे पर आ गई। लोगों को यह समझने में देर नहीं लगी कि यह इन महापुरुष की ही कृपा का फल है। नौकापति ने महापुरुष के चरणों में प्रणाम करके कहा, "महाराज, इस नौका में मेरा जो कुछ भी है वह सब आपका ही है। आपके आशीर्वाद से मैं फिर व्यापार करूंगा और चाहे जितना धन कमा लूँगा। लेकिन इस बार आपने मुझे जीवन-दान दिया है, इसलिए मेरा यह धन स्वीकार करके आप मुझे अनुग्रहीत करें।" नित्य-तृप्त संन्यासी को धन का लोभ कैसे हो सकता है? परन्तु बेचारे सेठ को सन्तुष्ट करना आवश्यक था। इसलिए महापुरुष ने कहा, "तम्हारी नौका में जो इतना गोपीचन्दन पड़ा है वह हमें दे दो, तो हमें सन्तोष होगा। बाकी का तुम्हारा धन तुम्हीं ले जाओ। हम तुम्हारा धन लेकर क्या करेंगे?"

उस गोपीचन्दन की पीली मिट्टी के ढेर में दैवयोग से दो मूर्तियाँ निकलीं। स्वामी ने एक मूर्ति की तो मालपे के किनारे ही स्थापना कर दी और दूसरी की स्थापना वहां से दो-तीन मील दूर उड़पी नामक स्थान में की। उड़पी के श्रीकृष्ण की यही मूर्ति देखने हम लोग गए थे। मन्दिर वैसे तो काफी छोटा है, परन्तु प्रमाण-बद्ध और सुन्दर है। वहाँ हमने एक विचित्र बात देखी। मन्दिर का महाद्वार हमेशा

बन्द रहता है, क्योंकि महाद्वार की ओर भीतर की मूर्ति की पीठ है। पीछ की ओर दीवार में पत्थर की एक जाली लगी हुई है; उस जाली से ही मूर्ति के दर्शन होते हैं। मन्दिर के भीतर जाना हो तो उसकी बाईं ओर जो दरवाजा है, उसी से जाया जा सकता है। हर कोई मन्दिर के भीतर नहीं जा सकता। हम लोग भीतर गए थे, लेकिन वहां ऐसा घोर अंधेरा था और वहां की हवा इतनी रुंधी हुई थी कि हम पसीने से तरबतर हो गए और हमारा दम घुटने लगा, मानो गर्भवास का दूसरा अनुभव कर रहे हों! घबराते ही घबराते हमने प्रार्थना की : "हे वैकुन्ठ-नायक, हमें दूसरी बार गर्भवास का अनुभव न हो।" हमारी समझ में यह बात नहीं आई कि मूर्ति की नाक पर सोने का टुकड़ा क्यों जड़ा गया है। काठियावाड़ की यह मूर्ति यहां दक्षिण में कैसे आ गई, यह प्रश्न हमारे मन में उठा। परन्तु कुतूहल तो यह था कि मूर्ति महाद्वार से विमुख क्यों है। जाँच करने पर अन्त्यज साधु कनकदास की कहानी सुनने में आई।

2

सन्त कवि कनकदास असल में धारवाड़ प्रदेश में बाड़ गांव के निवासी थे उनका मूल नाम था वीरनायक। वे शिकारी का धन्धा करते थे। अचूक बाण मारकर लक्ष्य को बींधने में उनकी बराबरी कर सकने वाला कोई दूसरा आदमी उनके समय में नहीं था। (उस समय किसने सोचा होगा कि अस्पृश्यों का यह सरदार उपनिषद् में बताई हुई :

प्रणवो धनुः, शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं; शरवत् तन्मयो भवेत्॥

जैसी दैवी बाणविद्या में भी प्रवीण हो जाएगा?)

वीरनायक चित्रकलदुर्ग (आज का चितलदुग) के राजा की सेना में सेनापति के पद पर पहुँचे थे। वे सम्पत्ति और प्रतिष्ठा के स्वामी बन गए थे। किन्तु एक बार एक युद्ध में उन्हें विरक्ति हो गई। अन्तर्नाद ने उनसे कहा, "वीरनायक, तू दुनिया की सारी माया का त्याग कर दे और एकतारा तथा भिक्षापात्र हाथ में लेकर दास बन जा!" आत्मवीरों का लक्षण ही यह है कि जीवन में परिवर्तन करते समय उन्हें मन के साथ बहुत संघर्ष नहीं करना पड़ता। और यदि संघर्ष करना भी पड़े तो वे इस संघर्ष में हारते नहीं। वीरनायक ने घर-बार त्याग दिया और वे यात्रा के लिए निकल पड़े। तिरुपति, कांची, कलहट्टी आदि स्थानों में घूम कर वे विजयनगर पहुंचे उस समय वहाँ महान कृष्णदेवराय राज्य करते थे। वहां वीरनायक को अपने गुरु मिल गए। उन्होंने उनसे मध्व-सम्प्रदाय की दीक्षा ली और फिर यात्रा आरम्भ कर दी।

चिदम्बरम, श्रीरंगम्, मदुरा, रामेश्वर, अनन्तशयन, कन्याकुमारी, गोकर्ण आदि स्थानों की यात्रा करते हुए अनेक प्रकार के कष्ट भोगते-भोगते कनकदास उड़पी आ पहुंचे। उड़पी कट्टर सनातनी ब्राह्मणों का केन्द्र था। कनकदास जैसे अन्त्यज को वहाँ खड़ा भी कौन रहने देता? ऐसी दशा में उन्हें भिक्षा देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अनेक संकट उठाने के बाद वादिराज स्वामी का ध्यान कनकदास की ओर गया। उड़पी के मन्दिर की व्यवस्था अलग-अलग आठ मठों के स्वामियों के हाथ में थी। इनमें से सोडे मठ के मुखिया थे वादिराज स्वामी। वे असाधारण विद्वान् तथा धर्मशील व्यक्ति के नाते प्रसिद्ध थे। उन्होंने समझ लिया कि कनकदास उनसे भी बड़ा भक्त है। मन्दिर की पूजा के बाद वादिराज स्वामी प्रथा के अनुसार सबको हस्तोदक देते थे और उसके बाद ही सब ब्राह्मण भोजन करने बैठने थे। यह हस्तोदक प्रतिष्ठा के क्रम में ही सबको मिलता था। कनकदास की योग्यता जान लेने के बाद वादिराज स्वामी मन्दिर से निकल कर सबसे पहले कनकदास के पास जाते थे और उन्हें हस्तोदक देने के बाद ही अन्य ब्राह्मणों को देते थे। इससे ब्राह्मण बहुत चिढ़ गए। वादिराज ने उनसे कहा : ''भाइयो, कनकदास मुझसे भी बड़ा भक्त है। इसे चरणामृत सबसे पहले

न दूं तो अधर्म हो।" ब्राह्मणों ने इसका प्रमाण मांगा। वादिराज मन्दिर में गए। वहाँ से दाहिने हाथ की मुट्ठी को बन्द करके वे बाहर आए और ब्राह्मणों से प्रश्न किया : "ब्राह्मणो, मेरे हाथ में क्या है? बताओ।" हर ब्राह्मण ने अलग-अलग उत्तर दिया। अन्त में कनकदास की बारी आई। वे तो भक्ति में मग्न हो गए। उनके कंठ से गीत फूटा : ''ये तो वासुदेव परमात्मा हैं।" जैसे-जैसे गीत आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे वादिराज के हाथ का बोझ भी बढ़ता गया। वे उस बोझ को सहन नहीं कर सके। अन्त में उन्होंने मुट्ठी खोल दी। उसमें क्या था? एक शालिग्राम और तुलसी-पत्र।

वादिराज स्वामी ने एक दिन ब्राह्मणों को एक-एक केला दिया और कहा, "आज एकादशी है। यह केला तुम ऐसे स्थान पर जाकर खाना जहां तुम्हें कोई न देख सके।" कनकदास को भी एक केला दिया गया था। शाम को सब लोग इकट्ठे हुए। वादिराज ने यह जानने के लिए सबसे पूछा कि उनकी आज्ञा का पालन किसने कैसे किया। (हर ब्राह्मण ने कहां-कहां एकान्त खोजा, यह हम जानते तो बड़ा मजा आता) अकेले कनकदास के हाथ में ही केला जैसा का तैसा था। उन्होंने कहा, "जहां जाऊं वही वासुदेव हैं। एकान्त कहां मिल सकता है? इसलिए में केले को हाथ में रखकर ही बैठा हूं।"

एक दिन कनकदास की इच्छा हुई कि मन्दिर के तालाब में स्नान करके भगवान के दर्शन किए जाएं। वादिराज उस दिन उड़पी में नहीं थे। कनकदास की इच्छा पूरी करे ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति उड़पी में नहीं था। जितनी बार वे दर्शन करने गए उतनी ही बार ब्राह्मणों ने उन्हें बाहर निकाल दिया। अन्त में निराश होकर कनकदास मन्दिर के पीछे गए। और वहां गीत गाने लगे। उन्होंने हृदय का सारा दु:ख अपने इस गीत में उँडेल दिया। परमात्मा से भक्त का यह दु:ख सहा नहीं गया। मूर्ति ने एकाएक उन कर्मकांडी ब्राह्मणों से विमुख होकर अपना मुख पीछे की ओर घुमा लिया।

यह क्या हो गया। अब क्या किया जाए? किसी को कुछ सूझता ही नहीं था। वादिराज आए। उन्होंने इस घटना के बारे में जानते ही ब्राह्मणों से कहा : "अरे, तुमने कनकदास का कोई अपराध किया है, इसीलिए भगवान वासुदेव ने हमारे आचार-धर्म की ओर पीठ फेर ली है।" अन्त में उन्होंने पीछे की दीवार में पत्थर की एक जाली बनवाई और कनकदास के लिए वासुदेव के दर्शन की सुविधा कर दी। आज भी वह खिड़की 'कनकदास की खिड़की' कही जाती है। उस खिड़की के पास ही कनकदास की कुटिया है। आज वहां संस्कृत का एक वर्ग चलता है।

एक बार रथयात्रा के अवसर पर जाने क्यों भगवान का रथ आगे बढ़ता ही नहीं था। अन्त में वादिराज ने कहा : ''मालूम होता है कि कनक के स्पर्श के बिना रथ चलने देने की भगवान की इच्छा नहीं है।"

धन्य हैं वादिराज स्वामी, जिन्होंने इस बात को समझ लिया कि अन्त्यजों के स्पर्श के बिना हिन्दू समाज की गाड़ी चल नहीं सकती। आज कर्नाटक में कट्टर से कट्टर पुष्टिमार्गी वैष्णव ब्राह्मण भी कनकदास के रचे हुए भजन गाकर अपना भक्ति रस बढ़ाते हैं और उन्हें सन्त के रूप में स्वीकार करके उनका चरितामृत गाकर अपने को पावन हुआ मानते हैं। परन्तु कनकदास के जातिबन्धुओं को तो वे तिरस्कार और धिक्कार के पात्र ही मानते हैं!! हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले वादिराज स्वामी प्रत्येक हिन्दू के हृदय में यदि अवतरित नहीं होंगे, तो हिन्दू धर्म का रथ चलेगा नहीं और परमात्मा हिन्दू समाज से विमुख ही रहेंगे।

27-9-'25

□

खादी का दर्शन

✍ **विनोबा भावे**

गांधीजी की प्रतिभा

खादी के शास्त्रकार महात्मा गांधी हो गये। अगर उन्होंने खादी का विचार न सुझाया होता, तो मुझे नहीं लगता कि हम लोगों को वह स्वतंत्ररूप से सूझता। एक दफा तो मैंने यहां तक कह डाला था कि "अगर अहिंसा का नाम लेकर गांधीजी सामने न आये होते तो दूसरा कोई आता, क्योंकि हिन्दुस्तान की विशेष परिस्थिति में इस चीज की जरूरत थी, उसके बगैर छुटकारा ही नहीं था। वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गयी थी।" यह जो मैंने अहिंसा के लिए बताया कि गांधीजी उसके लिए निमित्तमात्र ही हुए, वह बात खादी के लिए नहीं है। अगर गांधीजी हमें खादी न बताते, तो मुझे नहीं लगता कि सहज ही वह हमें सूझती। क्योंकि यह चीज सारे प्रवाह के बिल्कुल उलटी थी। हास्यास्पद भी मालूम होती थी। फिर वह हमें कैसे सूझती? आखिर हम पढ़े-लिखे जो थे, बुद्धिमान थे और पश्चिम की विद्या पाये थे। अर्थशास्त्र भी काफी पढ़े हुए थे। उस हालत में वह चीज हमें सूझना सम्भव ही न था। इसलिए खादी के विषय में कम-से-कम अपनी बुद्धि का उपयोग करने से पहले या साथ-साथ गांधीजी ने उस विषय में जो कुछ कहा है, उसका अध्ययन करना सबके लिए लाभदायक है।

खादी तो गांधीजी की विशेष ही कल्पनासृष्टि है। उनकी प्रतिभा, उनकी पुरुषार्थ-शक्ति ने खादी को एक व्यवहार्य रूप दे दिया। खादी के विषय में उनके सारे विचार एकत्र कर एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया है। सभी उस ग्रंथ का अध्ययन करें, तो अच्छा होगा। अपनी बुद्धि से जो संशोधन कर सकते हैं, वे जरूर करें। लेकिन उस ऋषि की क्या कल्पना थी, यह जान लेना अत्यन्त जरूरी है।

हमारा बगावत का झंडा

पुराने लोग हाथ से सूत कातते थे, तो उसमें कोई बड़ी बात नहीं थी। कुछ लोग कहते हैं कि चरखे के रहते हुए भी हमने स्वराज्य गंवाया। अब उसके बाद चरखा चलाने को क्यों कहते हो? लेकिन वह चरखा पुराना था, आज का चरखा दूसरा है। उस चरखे के सामने कोई खड़ा नहीं था। जिस तरह चंद्र अकेला प्रकाशित होता है, उसी तरह उस समय चरखे की हालत थी। उन दिनों का चरखा लाचारी का था। शायद उसमें कुछ शोषण भी हो। हमारा चरखा वह पुराना जीर्ण चरखा नहीं है, जो मिलों के अभाव में नग्नता ढकने के लिए अनिवार्य रूप से चलता था। हमारा चरखा मिलों का पूरक भी नहीं है, जो मिलों का स्थान मान्य करके उनके कारण पैदा हुई बेकारी की समस्या को राहत के रूप में हल करने का ढोंग करता है। वह है नवयुग का संदेशवाहक चरखा। ग्रामराज्य और रामराज्य का प्रतिनिधि। हरिजन-परिजन भेद मिटाने वाला। सब धर्मों को और पंथों को और फिरकों को एक परमेश्वर के प्रेम-सूत्र में बांधने वाला। अब हम सोचकर चरखे को अपनाते हैं। उसके पीछे चिन्तन है, विचार है। समाज-रचना की एक नयी तस्वीर हमारे सामने है।

बापू मीराबाई का एक भजन अनेक बार स्मरण करते थे–**काचे तांतणे रे मने हरिजीए रे बांधी**–एक कच्चा तार है, उसने मुझे बांधा है, और यह इतना मजबूत है कि उसके बल पर भगवान मुझे खींचते हैं, मैं उससे खिंची जाती हूं। इस कच्चे तार की प्रेमरज्जु से सारे विश्व को खींच सकते हैं। और हम

भी इसके पास खिंचे जाते हैं, यह भाव चरखे के पीछे निहित है।

काकासाहेब (कालेलकर) ने आज (6 मार्च, 1949) सुबह कहा कि "आज नहीं तो कल (क्योंकि आज वैसा कहने की हिम्मत नहीं आयी है)–हिन्दुस्तान को ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया को खादी अपनानी है।" काकासाहेब का यह वाक्य मुझे ऋषि-वचन जैसा लगा। ऋषि भविष्य की बात देखता है। उन्होंने बापू के नाम से वह कहा। बापू का उसमें जो है, वह है ही, क्योंकि सब उन्हीं का है। लेकिन काकासाहेब का भी दर्शन उसमें पड़ा है। मैं मानता हूं कि न बापू पागल थे, और न काकासाहेब पागल हैं। इसमें ठीक दृष्टि है। हमारे दूसरे काम भी अच्छे हैं और उन्हें करना चाहिए। लेकिन वे हमारी विचारधारा के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। क्योंकि उनके खिलाफ कोई विरुद्ध विचार खड़ा नहीं है। मिसाल के तौर पर कुष्ठरोगियों की सेवा लीजिए। सब मानते हैं कि कुष्ठरोगियों की सेवा होनी चाहिए। वह नहीं करनी चाहिए या दूसरे तरीके से वह सवाल हल हो सकता है, ऐसा कहने वाला कोई विरोधी विचार कुष्ठसेवा के खिलाफ खड़ा नहीं है। ग्राम-सफाई की बात हम आज करते है। वह काम भी जरूर करना चाहिए। लेकिन उसके विरोध में कोई विचार खड़ा नहीं है। सब उसे मंजूर करते हैं। पर खादी के बारे में वैसी बात नहीं है। खादी के विरोध में एक विचारधारा खड़ी है, और खद्दर उस विचारधारा के खिलाफ एक बगावत है।

आज सारी दुनिया की निष्ठा यंत्रविद्या में है। वैज्ञानिक इसे 'यंत्र-युग' कहते हैं। पुराने लोग कलियुग (कलयुग) कहते हैं। ऐसी स्थिति में जब हम खद्दर की बात करते हैं, तो समझना चाहिए कि दुनिया में जो विचारधारा आज चल रही है, उसके खिलाफ हमारा यह बगावत का झंडा है।

किसी भी हालत में अन्न पानी की जगह नहीं ले सकता। अन्न की महिमा मंजूर है, लेकिन पानी की भी अपनी महिमा है। पानी की महिमा पानी में ही भरी है। वही हाल चरखे का है। हमारे सर्वोदय-विचार में प्रचलित प्रवाह के विरुद्ध होकर जाना पड़ता है। यह एक तरह से हमारी बगावत है। उस बगावत की निशानी खेती नहीं हो सकती। उसकी निशानी तो चरखा ही हो सकता है। जहां हमें खेती को स्थान देने की इच्छा होती है, वहां कई लोगों को उसके साथ चरखे को पदच्युत करने की भी इच्छा होती है, मैं कहना चाहता हूं कि इसमें विचार-दोष है, इससे सावधान रहना चाहिए।

हमसे पूछा गया कि "अब तो भूदान का काम शुरू हुआ है। जमीन का मसला प्रमुखत: सामने आया है। और उसमें क्रांति निहित है। ऐसी हालत में हमारा रोज का नित्यकार्य कातने के बजाय कुछ खेत का काम क्यों न रखा जाये?" हमने कहा, "यह ठीक है। यह काम हरएक के लिए प्राणवायु का स्थान रखता है। फिर भी हमारा जो नित्य-यज्ञ है, वह कातना ही रहेगा। इस जमाने में कातना एक ऐसी चीज है, जिसके खिलाफ एक दर्शन (फिलॉसफी) खड़ा है; पर खेती के खिलाफ कोई दर्शन नहीं। आज यह कहने वाला कोई फिलॉसफी नहीं कि "अनाज के बदले हम और कोई चीज खा लें और निर्वाह कर लें या खेती की उपासना करने की जरूरत नहीं, वह एक दकियानूसी चीज है।" यह अलग बात है कि खेती में कौन-कौन से औजार इस्तेमाल किये जायें, आदि में फर्क हो सकता है, लेकिन मूलत: खेती के काम के खिलाफ कोई दर्शन खड़ा नहीं है।

हम दुनिया के सामने जो बगावत का झंडा, क्रांतिकारी कदम, क्रांतिकारी विचार रखना चाहते हैं, चरखा उसका संकेत है। हमारी दृष्टि में इस काम का यही महत्त्व है।

हमारे सर्वोदय के विचार में खादी को जो स्थान

शेष भाग पृष्ठ-13 पर

गंगनाथ विद्यालय में काकासाहेब

✍ रवीन्द्र केलेकर

'राष्ट्रमत' के बंद करने पर आगे क्या करना है, कहां जाना है, (काकासाहेब) कुछ तय नहीं कर पाए थे। ठीक इसी समय 'राष्ट्रमत' के कार्यालय में एक सज्जन पधारे। उनकी सूरत और आंखें देखते ही दत्तोपंत को लगा, यह कोई भव्य पुरुष हैं।

'क्या, गंगाधरराव हैं?' उन्होंने पूछा।

'जी।' दत्तोपंत ने जवाब दिया।

'कहां हैं?'

'आप बैठिए। मैं अभी बुला लाता हूं।' कहकर दत्तोपंत ने उन्हें बैठने के लिए एक आरामकुर्सी दी और वे गंगाधरराव को बुलाने प्रेस में गए।

गंगाधरराव के आते ही दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया और दोनों बातें करने बैठ गए।

'सुना है, आपके यहां कालेलकर नाम के एक युवक हैं।' आगंतुक ने पूछा।

दत्तोपंत बगल में ही खड़े थे। उनकी ओर अंगुली से निर्देश करके गंगाधरराव ने कहा, 'यही कालेलकर हैं।' और दत्तोपंत से कहा, 'यह बं. केशवराव देशपांडे हैं, जिनके बारे मे मैंने आप लोगों को कई बार बताया है।'

केशवराव दत्तोपंत की ओर मुड़े और कहने लगे, 'बड़ौदा में हम श्री गंगनाथ भारतीय सर्व विद्यालय नाम की एक राष्ट्रीय शाला चला रहे हैं। क्या आप हमारे यहां आकर काम कर सकेंगे?'

दत्तोपंत ने एक क्षण के लिए भी विचार किए बिना जवाब दिया, 'जी, आपके हाथ के नीचे काम करने का अवसर मिलना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।'

'तब आप बड़ौदा कब आ सकेंगे?' केशवराव ने पूछा।

'अभी तो विद्यालय में गरमी की छुट्टियां शुरू होंगी।' दत्तोपंत ने जवाब दिया, 'मैं अब यहां से शाहपुर जाऊंगा। वहां का कुछ काम निपटाकर एकाध हफ्ते के लिए गोवा जाऊंगा और वहां से सीधा बड़ौदा आ जाऊंगा। गरमी की छुट्टियां पूरी होने से पहले ही बड़ौदा पहुंच जाऊंगा।'

'अच्छा तो मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा।' केशवराव ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा। दत्तोपंत का बड़ौदा जाने का निर्णय सुनकर गंगाधरराव निश्चिंत हो गए।

ट्रेन सुबह बड़ौदा पहुंची। सफेद रेशमी फारसी फैशन का कोट, अंदर बटन से लगाया हुआ कालरवाला शर्ट, महीन धोती, कोट के ऊपर रेशमी किनार का उत्तरीय और सिर पर जरी की किनार का रेशमी साफा–इस वेशभूषा में वे स्टेशन पर उतरे। सामान में पुस्तकों से भरा हुआ एक ट्रंक था और दूसरा ट्रंक कपड़ों का था। एक अच्छा खासा फोल्डिंग चेयर भी थी। उनको लेने के लिए स्टेशन पर एक महाराष्ट्रीय नौजवान आया था, जो पहले गंगनाथ विद्यालय का विद्यार्थी था और अब शिक्षक बन गया था। नाम पूछा तब पता चला कि इस नौजवान को यहां मामा फड़के कहते हैं। मामा को इन नए आचार्य का ठाठ और सामान देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, कुछ हंसी भी आई।

शिक्षकों में इस पर केवल चर्चा ही नहीं, बल्कि बड़ी हंसी मजाक भी चली। बाद में संस्था के आदर्शों के अनुसार काका साहब ने अपनी पोशाक और रहन-सहन में परिवर्तन कर लिया।

मामा उन्हें स्टेशन से सीधे घुड़दौड़ के रास्ते काशी विश्वनाथ के मंदिर में, जहां गंगनाथ विद्यालय चलता था, ले गए और कहा, थोड़ी देर में वामन शास्त्री दातार आएंगे, वे आपके रहने आदि का प्रबंध करेंगे,

तब तक आप यहीं बैठे रहिए। वामन शास्त्री से पहले ही परिचय था। वे संस्था के संचालकों में से एक थे। उन्हीं की मांग पर दत्तोपंत ने अपने मित्र लेले को इस संस्था में भेजा था। उन्होंने ही दत्तोपंत के बारे में केशवराव देशपांडे को कहा था और उन्हीं के कहने से गंगाधरराव से दत्तोपंत की मांग करने के लिए केशवराव राष्ट्रमठ में आए थे। दातार बड़ौदा में वैद्यराज के रूप में प्रख्यात थे। उनकी यहां बड़ी प्रतिष्ठा थी और बोलते भी थे किसी नेता की तरह। कुछ देर में दातार आए और दत्तोपंत को तुरंत केशवराव देशपांडे के यहां ले गए। स्टेशन यार्ड के सामने एक पारसी की बड़ी कोठी में केशवराव रहते थे। उनके घर के लोग गरमी के कारण अपने गांव कोल्हापुर गए थे, इसलिए केशवराव अकेले ही रहते थे। वामन शास्त्री जब दत्तोपंत को उनकी कोठी में ले गए, तब केशवराव घर में थे। वामन शास्त्री ने अंदर प्रवेश करते ही केशवराव से कहा, 'साहब! (केशवराव को बड़ौदा में सभी इसी नाम से पुकारते थे) हम कालेलकर को आपको गोद देने के लिए ले आए हैं।'

साहब ने बड़े प्रेम से स्वागत किया और कहा, 'फिलहाल गर्मी की छुट्टियों के कारण विद्यालय बंद है। वह शुरू होगा तब तक आपको यहीं मेरे यहां रहना है।'

उन्होंने दत्तोपंत को उनका कमरा दिखा दिया। स्नान के लिए पानी आदि की व्यवस्था कहां है, बता दिया और नाश्ता दिलाकर वे अपने दफ्तर चले गए।

केशवराव उन दिनों बड़ौदा में कलेक्टर के ओहदे पर थे।

दत्तोपंत को यहां कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई। वे आराम से रहे।

वे बेलगांव, पूना, बम्बई की आबोहवा से परिचित थे। बड़ौदा की गर्मी की उन्हें कल्पना भी नहीं थी। एक तो इस गर्मी के कारण और दूसरे यात्रा की थकावट के कारण वे दोपहर का भोजन करके सो गए।

शाम का समय हुआ। केशवराव के दफ्तर से लौटते ही कोठी के बाहर बगीचे में जमीन पर पानी छिड़का गया और कुर्सियां रख दी गईं। थोड़ी देर में एक चपरासी ने दत्तोपंत के कमरे का दरवाजा खटखटाया और कहा, 'आपको साहब बाहर बुला रहे हैं।'

बाहर बैठे-बैठे बहुत बातें हुई। बातों के द्वारा नये आदमी को पहचानने का केशवराव का यह अपना तरीका था और दिल खोलकर बातें करके केशवराव को अपना पूरा परिचय देने का दत्तोपंत के लिए यह सुंदर अवसर था। तब से शाम होते ही साहब के सामने उपस्थित रहना दत्तोपंत का एक दैनिक कर्म हो गया। जब तक वे बड़ौदा में रहे, यह सिलसिला जारी रहा। इससे दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये थे।

गंगनाथ की जन्मकथा

बड़ौदा पहुंचते ही दत्तोपंत ने अपने आसपास के वातावरण का निरीक्षण करना शुरू किया। जो शक्तियां बड़ौदा की दुनिया में काम कर रही थीं, उन्हें पहले पहचान लिया।

सबसे पहले बड़ौदा के नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ की ओर उनका ध्यान गया। लगा, यह देश के उन पांच-सौ, साढ़े पांच-सौ नरेशों में से नहीं हैं, जो एशो-आराम में जीवन बिता रहे हैं। उन सबमें ये बिल्कुल अनोखे हैं। शीलवान हैं, पढ़े-लिखे हैं, प्रजाहित-चिन्तक हैं और काफी प्रगतिशील हैं। बड़ौदा राज्य को आधुनिकतम बनाने के प्रयत्नों में ही हमेशा संलग्न रहते हैं। उन्होंने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य बना दी है और दूर-दूर के देहातों तक पाठशालाओं का जाल फैला दिया है। अस्पृश्यों के लिए खास पाठशालाएं खोल दी। इन पाठशालाओं के लिए जब उन्हें हिन्दू शिक्षक नहीं मिले, तब उन्होंने मुसलमान शिक्षक नियुक्त किए, पर पाठशालाएं आग्रहपूर्वक चलाई। अस्पृश्यों के पुरोहितों को शिक्षा मिले, इसलिए खास पाठशालाएं खोल दीं। इस वक्त

लगभग ढाई-सौ अस्पृश्य बड़ौदा प्रशासन में कर्मचारी के तौर पर काम करते हैं। अपने राज्य में अंतर-जातीय विवाह और विवाह-विच्छेद-जैसे कानून भी बनाने की उन्होंने हिम्मत दिखाई और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह देखी कि राज्य का पूरा प्रशासन स्थानीय गुजराती भाषा में चला रहे हैं।

चूंकि इससे पहले राजा मराठा थे, इसलिए यहां का प्रशासन भी मराठी में चलता था। सयाजीराव ने मराठी का व्यवहार अपनी निजी कचहरी तक ही सीमित रखा। बाकी का सारा कारोबार आग्रहपूर्वक प्रजा की भाषा गुजराती में चलाया। उनसे पहले प्रशासन में महाराष्ट्रीय लोग ही भर्ती किए जाते थे, सयाजीराव ने यह भी बदल दिया। देश में जहां पर भी कोई बुद्धिमान-होशियार नौजवान दिखाई दिया, उसे वे बड़ौदा ले आए और उसे योग्य स्थान पर बिठा दिया। रोमेश चन्द्र दत्त जैसे एक आई.सी.एस. अफसर, जो कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे, थोड़े समय पहले यहां के दीवान थे। वे केवल कार्यकुशल प्रशासक ही नहीं, बल्कि एक बड़े विद्वान भी थे। ऐसे कई विद्वानों को उन्होंने अपने राज्य में अलग से आश्रय दिया था। काजी शहाबुद्दीन, पेस्तनजी जहांगीर, अम्बालाल साकरलाल जैसे कुशल प्रशासक बड़ौदा में बड़ी योग्यता के साथ अलग-अलग महकमों को संभाल रहे थे। सन् 1893 में सयाजीराव यूरोप की यात्रा पर गये थे। वहां इंग्लैंड में उनकी नजर में एक तेजस्वी बंगाली नौजवान आया, जो शिक्षा-दीक्षा से नखशिखान्त अंग्रेज बन चुका था। सयाजीराव ने इस नौजवान की योग्यता को परख लिया और उसे वहां से बड़ौदा ले आए। इस नौजवान का नाम था, अरविंद घोष। केशवराव देशपांडे इंग्लैंड में अरविंद बाबू के सहपाठी थे, दोनों गहरे मित्र भी थे। अरविंद के आग्रह के कारण सयाजीराव केशवराव को भी बड़ौदा ले आए। पहले वे असिस्टेंट कलेक्टर के स्थान पर थे, फिर आबकारी विभाग के कलेक्टर बन गए थे।

बाहर से लोगों को लाकर उन्हें राज्य के प्रमुख पद देने की सयाजीराव की नीति से उनके पुराने मराठा सहयोगी नाराज हो गये। वे उनकी काफी आलोचना करते थे, कई तो चिढ़ भी गए थे। हमने खून बहाकर आपको यह राज्य दिलाया और अब हमारी राजनिष्ठा की कद्र नहीं होती, इस तरह की शिकायतें भी उन्होंने की। तब सयाजीराव ने उन्हें जवाब दिया, 'भाइयो! राजनिष्ठा के दिन अब नहीं रहे हैं, राजाओं के लिए प्रजानिष्ठ होने के दिन आ गए हैं। इससे सब निरुत्तर हो गए थे।' सयाजीराव सिर्फ अपनी गद्दी संभालना नहीं चाहते थे, बल्कि देश के सामने एक अच्छे कल्याणकारी राज्य का उत्तम नमूना पेश करने की ख्वाहिश भी रखते थे। प्रगतिशील कानूनों के द्वारा वे एक ओर पुरानी जीर्ण-शीर्ण समाज-व्यवस्था को बदलना चाहते थे तो दूसरी ओर परम्परा से चलता आया मराठों का ठेका तोड़ कर वे अपने राज्य को प्रशासन की दृष्टि से आधुनिकतम बनाना चाहते थे। तीसरी ओर देशी रियासतों में अंग्रेजों का जो बार-बार हस्तक्षेप हुआ करता था, उससे वे अपने राज्य को दूर रखना चाहते थे।

सयाजीराव देशभक्त भी थे। अपनी मर्यादा में रहकर वे राष्ट्रीय आंदोलन को सब तरह से सहायता देने की इच्छा रखते थे। कई क्रांतिकारी देशभक्तों ने गुप्त रूप में उनके राज्य में आश्रय लिया था। उन्हें अंग्रेजों से बचाने की वे हर तरह की कोशिश करते थे।

उनकी तेजस्विता से लॉर्ड कर्जन जैसे तानाशाह भी परिचित थे। सभी देशभक्त उनकी इज्जत करते थे। कभी-कभी आपस में कहते थे कि जब भारतवर्ष स्वतंत्र होगा तब सयाजीराव को हम बड़ौदा के नरेश नहीं रहने देंगे, बल्कि भारत का पहला राष्ट्राध्यक्ष बनाएंगे।

जिस गंगनाथ विद्यालय में दत्तोपंत हेड मास्टर के रूप में काम करने आए थे, वह केवल मामूली विद्यालय नहीं था; वह क्रांतिकारियों की एक प्रयोगशाला

थी। इसके पीछे अरविंद बाबू की प्रेरणा थी। अरविंद बाबू बड़ौदा में थे, तब केशवराव उन्हीं की कोठी पर रहते थे। अरविंद बाबू दिव्य-दर्शन दृष्टा थे और केशवराव कुशल संगठक थे। दोनों ने एक योजना बनाई थी, जिसको उन्होंने 'भवानी मंदिर योजना' नाम दिया था। दोनों देवी के उपासक थे, सप्तशती का नियमित पाठ करते थे। सप्तशती के सात सौ श्लोक हैं। हरएक श्लोक के प्रतिनिधि के रूप में एक सैनिक इस हिसाब से वे सात सौ शाक्त सैनिकों का एक संघ निर्माण करना चाहते थे, जो समय आने पर सारे देश में क्रांति की मशाल प्रज्वलित करने वाला था। दोनों को बंकिम बाबू के आनंदमठ उपन्यास से यह प्रेरणा मिली थी। अरविंद बाबू इस योजना की ओर दिव्य आदेश के रूप में देखते थे। उन्होंने यह योजना एक पुस्तिका के रूप में लिख भी डाली। केशवराव पर इसकी धुन सवार हो गई थी। इस योजना को लेकर देश के नेताओं से विचार-विनिमय करने के लिए वे देश-भर का एक चक्कर लगा आए थे। सन् 1905 में पंढरपुर में एक औद्योगिक प्रदर्शनी आयोजित हुई थी, जिसमें वहां महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, चिंतामण राव वैद्य, अण्णासाहब विजापुरकर जैसे मनीषी इकट्ठा हुए थे। केशवराव ने इस योजना के बारे में उनसे भी विचार-विनिमय किया था। सभी ने इस योजना का स्वागत किया था। महाराष्ट्र के एक धनिक ने आर्थिक सहायता देने का अभिवचन भी दिया था, बशर्ते कि भवानी-मंदिर महाराष्ट्र में ही कहीं खड़ा किया जाए। केशवराव के लिए यह शर्त स्वीकार करना कठिन था, क्योंकि वे बड़ौदा में रहते थे और बड़ौदा से दूर स्थित मंदिर का संचालन करना उनके लिए असंभव था।

भवानी-मंदिर का बाह्य स्वरूप शुरू में एक राष्ट्रीय विद्यालय जैसा ही रहने वाला था। विद्यालय में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, विद्यार्थियों को शारीरिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा मिले, भाषा, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि हमेशा के विषयों के अलावा भारत का इतिहास भारतीय दृष्टिकोण से पढ़ाया जाए, योगासन, व्यायाम, फौजी कवायद भी चले। विद्यार्थी और शिक्षक आसपास के गांवों में फैलें, वहां प्रौढ़ शिक्षा के वर्ग चलाएं, तरह-तरह के ग्रामोद्योगों के द्वारा गांव को संगठित करें—इस तरह का एक कार्यक्रम बनाया गया था। पर यह सारा कार्यक्रम भवानी-मंदिर के असली चेहरे को छिपाने के लिए ओढ़ा हुआ एक आवश्यक नकाब ही था। उसका असली उद्देश्य विद्यालय के द्वारा धीरे-धीरे भारत की स्वतंत्रता के लिए जीवन समर्पित करने वाले क्रांतिकारियों का एक संघ खड़ा करना था।

भवानी-मंदिर की धुन अरविंद के भाई बारीन्द्र कुमार पर भी सवार हुई, तब उसके लिए अनुकूल स्थान ढूंढ़ते-ढूंढ़ते लगभग छः महीने तक वे भारत का चक्कर लगाते रहे। घूमते-घूमते वे नर्मदा के तट पर पहुंचे। वहां चांदोद नाम का एक अत्यंत रमणीय स्थान उन्हें मिल गया। वहां कई मालदार मठाधिपति अपने-अपने मठ चला रहे थे। उन्हीं मठों के बीच उन्हीं की मदद से विद्यालय के रूप में एक नया मठ चलाने के उद्देश्य से उन्होंने वहां के मठाधिपतियों से विचार-विनिमय शुरू किया। इन मठाधिपतियों ने न केवल इस योजना का स्वागत किया, बल्कि उसे कार्यान्वित करने के लिए आर्थिक सहायता देने का भी अभिवचन दिया। शर्त एक ही थी कि विद्यालय के अंदरूनी कारोबार में हिस्सा लेने का उनको भी अधिकार मिले। केशवराव इस शर्त को मंजूर करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए वे दूसरा स्थान ढूंढ़ने लगे। सौभाग्य से उन्हें चांदोद में ही एक पहाड़ी पर स्थान मिल गया, जहां गंगनाथ नामक एक मठ चलता था। इसके मठाधिपति ब्रह्मानंदजी नामक एक साधु थे, जो आत्मज्ञान-संपन्न माने जाते थे। वे केशवराव और बारीन्द्र कुमार को आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार हुए। फलस्वरूप ब्रह्मानंदजी की मदद से उन्हीं के मठ में 7 मई 1907 के दिन 'गंगनाथ भारतीय सर्व

विद्यालय' की स्थापना हुई।

प्रारंभ तो हुआ। केशवराव कई अच्छे-अच्छे देशभक्त नौजवानों को जुटाकर ले आए और उन्हें यहां शिक्षक के रूप में स्थानापन्न कर दिया। उन दिनों किसी राष्ट्रीय विद्यालय में शिक्षक बनने के लिए किसी को शिक्षाशास्त्र में प्रशिक्षित होना आवश्यक नहीं था। शिक्षक पढ़ा-लिखा हो, चारित्र्यवान हो, स्वाभिमानी हो और विद्यार्थियों को देशभक्ति का चसका लगाने की तड़प रखता हो, इतनी ही योग्यता काफी मानी जाती थी। केशवराव इस तरह के अच्छे-से-अच्छे शिक्षक जुटा सकने में सफल हुए।

पहले ही वर्ष विद्यालय में लगभग चालीस विद्यार्थी भर्ती हुए। भाषा, गणित, भूगोल आदि विषयों के साथ-साथ वे देशभक्ति के कुछ गीत भी सीखते थे और दंड-बैठक, लाठी-बनेठी-जैसी कुछ शारीरिक शिक्षा भी लेने लगे।

उन दिनों स्वयं बारीन्द्र कुमार उनके बीच आकर रहे थे। कुछ समय बाद इस विद्यालय को चांदोद से हटाकर बड़ौदा लाने के लिए केशवराव मजबूर हुए। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि इस बीच ब्रह्मानंदजी का देहांत हो गया। उनकी गद्दी पर उनके शिष्य केशवानंद आए, जो यों तो उत्साही थे, विद्यालय की प्रवृत्तियों में काफी रुचि भी रखते थे, स्वयं विद्यार्थियों को योगासन वगैरह सिखाते भी थे, पर विचारों में रूढ़िवादी थे। पूजा अर्चना, गद्दी के प्रति निष्ठा, धार्मिक उत्सव ऐसी ही बातों में अधिक विश्वास रखते थे। क्रांतिकारी राष्ट्रवाद से वे प्रभावित नहीं थे।

केशवराव ने सोचा, विद्यालय अगर इसी तरह चला तो उसका उद्देश्य ही खत्म हो जायेगा। इसलिए उसे गंगनाथ से हटाकर बड़ौदा में ही लाना उन्होंने उचित समझा।

विद्यालय को बड़ौदा में लाने का दूसरा कारण यह था कि इस बीच बंग-भग के विरुद्ध देश में एक बड़ा आंदोलन चला और उसमें अरविन्द तथा बारीन्द्र दोनों गिरफ्तार हो गए। फलस्वरूप उनकी भवानी मंदिर की योजना भी सरकार के हाथ लग गई। यह योजना अब तक केवल क्रांतिकारियों के बीच ही प्रचारित हुई थी, सरकार को उसकी कोई जानकारी नहीं थी। केशवराव ने सोचा, जो कुछ होना हो, अपनी आंखों के सामने ही हो। इसलिए गंगनाथ विद्यालय को गंगनाथ से हटाकर वे बड़ौदा ले आए। अभ्यंकर नामक एक विद्यार्थी की उन्हें मदद मिली। वह एक ही रात में विद्यालय को चांदोद से बड़ौदा ले आया और बड़ौदा में रेसकोर्स के पास जहां काशी विश्वेश्वर का एक बड़ा मंदिर है, वहां स्थापित कर दिया।

गंगनाथ मठ के महंत केशवानंद विद्यालय को अब तक आर्थिक सहायता देते रहे थे। अब चूंकि विद्यालय बड़ौदा चला गया था अतः उन्होंने सहायता देना बंद कर दिया। इसलिए विद्यालय का सारा आर्थिक बोझ केशवराव देशपांडे को ही उठाना पड़ा। वे विद्यालय के प्राण थे। वे अपनी तनख्वाह से हर महीने लगभग तीन सौ रुपये विद्यालय के खर्च के लिए देते थे। इसके सिवा वे हर रविवार को विद्यालय के विद्यार्थियों और शिक्षकों को लेकर घर-घर भिक्षा मांगने जाते थे और मुट्ठी-मुट्ठी भर अनाज इकट्ठा करके विद्यालय को देते थे।

विद्यालय के संचालन के लिए उन्होंने सात सदस्यों की एक समिति बनाई थी और पांच सदस्यों का एक नियंत्रण बोर्ड नियुक्त किया था। सभी सदस्य बड़ौदा के ही निवासी थे, बड़ौदा राज्य की नौकरी में भी थे। इसलिए अंग्रेजों की नजर उस पर नहीं पड़ेगी, यही उम्मीद उन्होंने रखी थी। उन्हें एक ओर अंग्रेजों की वक्र दृष्टि से विद्यालय को बचाना था तो दूसरी ओर अकर्मण्य, निर्जीव समाज में जान फूंककर उसे भवानी मंदिर के आदर्शों की ओर ले चलना था। बड़ा मुश्किल काम था। बड़ी सावधानी से वे आगे बढ़ते थे।

बंग-भंग के कारण देश में असाधारण जागृति फैली थी, किन्तु उसके बावजूद देश के मध्यम वर्ग की

मनोवृत्ति में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा था। यह बड़ी विचित्र मनोवृत्ति है। उसे केवल धर्म की ही चिंता है। सरकार भले ही विदेशी हो, जब तक धर्म के मामलों में वह हस्तक्षेप नहीं करती, तब तक उसकी नौकरी करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अंग्रेज ईसाई हैं, ठीक है। ईसाइयों के प्रति वे पक्षपात रखते हैं, यह स्वाभाविक ही है। ईसाई धर्म के प्रचार में रुचि रखते हैं, भले रखें। पर हिन्दू, मुसलमानों को तो अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने देते हैं। फिर उनकी नौकरी करने में क्या आपत्ति है? सरकारी नौकरी के कई लाभ हैं। एक तो अच्छी तनख्वाह मिलती है, दूसरी ओर समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है। लोगों के कुछ काम भी आसानी से किए जा सकते हैं। फिर देशभक्ति के नाम पर जान खतरे में डालने में क्या बुद्धिमानी है? यही साधारण रूप में लोगों के सोचने का तरीका था। ऐसे वायुमंडल में किस प्रकार क्रांति की जा सकती थी?

केशवराव पूरी तरह जानते थे कि हमें फिलहाल क्रांति नहीं करनी है, बल्कि क्रांति की पूर्व तैयारी ही करनी है। क्रांति की पूर्व तैयारी करना यही गंगनाथ विद्यालय का उद्देश्य था। इसलिए वे सावधानी से कदम उठाते रहे।

फिलहाल विद्यालय में शिक्षा का ही काम चलता था। साधारण रूप में जो शिक्षा दूसरे विद्यालयों में दी जाती है, वही यहां दी जाती थी। कताई-बुनाई आदि कुछ उद्योग भी पढ़ाई के साथ जोड़ दिए गए थे। थोड़ी फौजी तालीम दी जाती थी। यह तालीम बड़ौदा राज्य के सरसेनापति जनरल नाना साहब शिंदे स्वयं देते थे। राजद्रोह की कोई प्रवृत्ति नहीं चलती थी। हां, विद्यालय के शिक्षक सभी देशभक्त थे, क्योंकि देशभक्ति से ओत-प्रोत शिक्षक ही चुनकर लाए गए थे और उन्हीं के हाथों में विद्यालय सौंपा गया था

□

पृष्ठ-7 का शेष भाग

है, वह दूसरी किसी चीज को नहीं। यह ध्यान में रहे कि हम दूसरी चाहे हजार बातें करें, लेकिन खद्दर में अगर कामयाब नहीं होते, तो गांधीजी के विचारों का दावा छोड़ देते हैं। और हार कबूल करते हैं। खद्दर में हार कबूल करें, तो दूसरी सेवा भी हम छोड़ दें ऐसा नहीं है। वह तो हम करें ही। लेकिन वह सारी सेवा हमारे विचारों की दृष्टि से गौण हो जाती है, इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि खद्दर छोड़ने पर हम असत्य और हिंसा का आचरण करते हैं। फिर भी जिस सामाजिक अहिंसा का विचार हम कर रहे हैं, उस तरह की अहिंसा के लिए मैं खतरा देखता हूं, अगर हम खादी को अव्यावहारिक मानते हैं।"

मान लीजिए, 'गांधी-विचार वाले रोज नियमित कातते और मरने तक कातते हैं। यह मान लिया कि मैंने यह व्रत लिया है, इसलिए कातता हूं और उसे छोड़ने वाला नहीं हूं।' किन्तु यदि उन्हें निश्चय हो कि 'खादी की बात हिन्दुस्तान में चलने वाली नहीं है, कोई बेकार हो और मजदूरी चाहता हो तो भले ही काते,' साथ ही यह विश्वास न हो कि 'स्वावलम्बन की दृष्टि से जैसे किसान अपने लिए अनाज खुद पैदा करता है, उसके लिए काश्त करता है, इसी तरह हमारा कपड़ा भी हमें तैयार कर लेना चाहिए,' तो यह नहीं कहा जायेगा कि गांधी-विचार की दृष्टि से जो करना है, वही वे करते हैं। विचार तो ऐसा करना चाहिए कि चरखा एक विचार का चिह्न है, प्रतीक है। चरखा यानी अहिंसा का विचार, अहिंसा का प्रतीक है।

हम सर्वोदय-विचार वाले जितने भी नये-नये विचार सूझें, उनके प्रयोग जरूर करें, लेकिन यह कभी न भूलें कि हमारा मूल आधार चरखा ही है। अगर हम उसे खोते हैं तो अहिंसा का रहस्य भूल जाते हैं। फिर हिन्दुस्तान में अहिंसा लाने में हम असमर्थ सिद्ध होंगे।

□

गांधीजी की आर्थिक दृष्टि

✍ **प्यारेलाल**

गांधीजी की आर्थिक व्यवस्था के मुख्य अंग ये हैं : (1) सघन, छोटे पैमाने की, व्यक्तिगत और विभिन्न फसलों वाली खेती – जिसे सहकारी प्रयत्न का सहारा हो, न कि यान्त्रिक और बड़े पैमाने पर की जाने वाली सामूहिक खेती; (2) खेती के सहायक गृह-उद्योगों का विकास; (3) पशुओं पर आधारित अर्थ-व्यवस्था जिसमें 'लौटाने का नियम' सख्ती से अमल में लाया जाय – यानी जो कुछ धरती से निकाला जाय उसे सजीव रूप में धरती को लौटा दिया जाय; (4) पशु, मानव और वनस्पति-जीवन का ठीक संतुलन और एक-दूसरे के लाभ के लिए उनका परस्पर सम्बन्ध; और (5) सामाजिक योगक्षेम के लिए यन्त्रों की प्रतिस्पर्धा में मानव और पशु दोनों शक्तियों की स्वेच्छा से रक्षा।

अपने को अधिक बुद्धिमान माननेवाले आलोचकों ने कभी-कभी इसे 'अप्रगतिशील, विज्ञान से पहले का मध्यकालवाद', 'गोबर-युग में वापस जाना' और 'बैलगाड़ी की मनोवृत्ति' बताया है। सच बात तो यह है कि गांधीजी अपने समय से बहुत आगे थे। लेकिन मूलत: वे कर्मठ पुरुष और मौलिक विचारक थे, इसलिए वे अपने विचारों को जान-बूझकर आम लोगों की सादी भाषा का जामा पहनाना पसन्द करते थे। उन्हें इन्हीं लोगों के द्वारा अपनी क्रान्ति को कार्यान्वित करना था, इसलिए वे अपने विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दाडंबर वाली प्रचलित वैज्ञानिक भाषा का उपयोग नहीं करते थे।

कृषिशास्त्र में हाल ही हुई प्रगति के कारण 'लौटाने के नियम' पर अधिकाधिक जोर दिया जाने लगा है। एक अटल शर्त, जिसके आधार पर मनुष्य को प्रकृति पर राज्य करने दिया जाता है, यह है कि वह अपने आसपास के वातावरण को पहले से अधिक अच्छी स्थिति में छोड़कर जाय। इस नियम का थोड़ा सा भी भंग होने से प्रकृति कठोर और तात्कालिक न्याय करती है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य धरती की पूंजी को ऐसी गति से सम्पत्ति में बदल रहा है कि उससे स्वयं सभ्यता के भविष्य के लिए ही भारी खतरा पैदा हो गया है। यहां यह याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि अच्छे व्यवसाय पूंजी में से मुनाफा बांट कर कभी स्थिरता से नहीं चलाये जाते।

प्रकृति में सर्वत्र गाढ़ आर्थिक और जैविक सम्बन्ध देखने में आता है। पौधे और पशु धरती के सूक्ष्म जीवाणुओं के साथ मिलकर एक जाति बनाते हैं। इन तीनों को धरती से पोषण मिलता है और जब ये मरते हैं, तब जो कुछ इन्होंने धरती से लिया हो वही उसे लौटा देते हैं। चूंकि कुछ पौधों और कुछ प्राणियों को एक की अपेक्षा दूसरे तत्त्व की ज्यादा जरूरत होती है, इसलिए वनस्पति और प्राणि-जातिया परस्पर पूरक समूहों में सम्बद्ध हो जाती है। पशु "कठोर वनस्पति का रूपान्तर करने वाले" हैं। वे कठोर वनस्पति को मनुष्य के खाने योग्य आहार में बदल देते हैं। इसके सिवा, वे अपने मल-मूत्र से धरती को उपजाऊ बनाते हैं। जीवन के तत्त्व धरती से प्राणियों और पौधों के शरीर में प्रवेश करते हैं और जीवन के एक स्वरूप से दूसरे में संक्रान्त होते हैं। इसे प्राय: 'नत्रजन-चक्र' (Nitrogen Cycle) कहा जाता है। जीवन के इन तत्त्वों का चक्र निरन्तर गतिमान रहता है। जीवन के इस चक्र को गतिमान रखने वाली इस प्रक्रिया को 'सिम्बिोसिस' अर्थात् जीवन को टिकाये रखनेवाला परस्परावलम्बन कहा जाता है।

आर्थिक और जैविक पहलू के अलावा मानव-जीवन का एक और पहलू है, जिसका सम्बन्ध प्रकृति के साथ होता है, आध्यात्मिक है। जब आध्यात्मिक और भौतिक पहलू के बीच का संतुलन टूटता है, तब रोग पैदा होता है।

गांधीजी ने कहा है : "पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता पूरी करने के लिए तो काफी देती है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य के लोभ को तृप्त करने के लिए नहीं

देती।" जब तक हम जीवन-चक्र के साथ सहयोग करते हैं, तब तक जमीन अपना उपजाऊपन निरन्तर नये सिरे से निर्माण करती रहती है और जो उस पर निर्भर करते हैं उन्हें स्वास्थ्य, मनोरंजन, पोषण और सुखशान्ति प्रदान करती रहती है। परन्तु जब 'छीन कर खाने' की वृत्ति का बोलबाला होता है, तब प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है और सर्वत्र जीवन के क्षेत्र में बिगाड़ होने लगता है। इसलिए मनुष्य-जीवन और प्राणी-जीवन के बीच तथा प्राणी-जीवन और वनस्पति-जीवन के बीच ठीक सम्बन्ध और संतुलन होने पर धरती और समाज दोनों के स्वास्थ्य का आधार रहता है। मनुष्य, प्राणी और वनस्पति का स्वास्थ्य जमीन के स्वास्थ्य पर आश्रित है, "स्वास्थ्यप्रद खुराक पानेवाली जमीन अपना स्वास्थ्य वनस्पति को देती है, वनस्पति अपना स्वास्थ्य प्राणियों और मनुष्यों को देती है और मनुष्य अपनी विवेकपूर्ण खेती से उसे फिर जमीन को लौटा देता है। यह 'स्वास्थ्यचक्र' है।"

धरती केवल जड़ और अचेतन पदार्थ नहीं है। वह एक सजीव प्रयोगशाला है, जहां सजीव जीवाणुओं और सजीव पदार्थों की परस्पर प्रतिक्रिया से नव-जीवन के निर्माण को प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह धारणा अब सही नहीं रही कि जमीन की उर्वरता केवल नाइट्रोजन, पोटाश और फॉस्फोरस की काफी बड़ी मात्रा देने पर निर्भर करती है और बड़ी मात्रा में रासायनिक खाद देने से जमीन की उर्वरता हमेशा नये सिरे से प्राप्त की जा सकती है। धरती की बनावट, धरती में पाये जानेवाले जीवाणु और धरती की सुस्थिति सबका धरती के उपजाऊपन से गहरा सम्बन्ध है। धरती की सही रचना अधिकतर उसमें रहे कीटाणुओं तथा ह्यूमस तत्त्व की मात्रा पर आधार रखती है। ह्यूमस तत्त्व के अभाव के कारण धरती की छिद्रालुता अथवा मुलायमी नष्ट हो जाती है, जिसकी वजह से धरती के सम्बन्ध में अत्यन्त हानिकारक परिणाम पैदा होते हैं। यह ह्यूमस तत्त्व धरती को सड़े हुए जानवरों तथा वनस्पति के अवशेषों से प्राप्त होता है।

वनस्पति और प्राणियों के अवशेषों के सड़ जाने से जीवित वनस्पति को आहार और ह्यूमस तत्त्व मिलता है। इसके अलावा जीवित वनस्पति से जमीन को ऐसी रक्षक चादर मिलती है, जो हवा और वर्षा के जमीन को काटनेवाले असर से उसे बचाती है। 'आधुनिक जीवन' की जरूरतें पूरी करने के लिए या खेती के योग्य जमीन प्राप्त करने के लिए जंगलों को अदूरदर्शितापूर्वक काटने से, जमीन पर उगे हुए घास की जड़ तक नष्ट हो जाय, इस हद तक ढोरों को चराने से तथा व्यापार के लिए पशु-पालन करने से और ट्रेक्टरों का विवेकहीन प्रयोग करने से जमीन इस चादर से वंचित हो जाती है। गहरी जुताई से जमीन के भीतर घास की आपस में गुंथी हुई जड़ें कट जाती हैं और वापस जमीन में मिलकर हरी खाद का काम देती है। इससे शुरू में तो विपुल मात्रा में फसलें पैदा होती है, परन्तु बाद में आम तौर पर तेजी से उनकी पैदावार घटती जाती है। जमीन की रक्षा करनेवाली चादर के न होने से या जमीन को बांध कर रखनेवाली घास की जड़ों के उखड़ जाने से धरती का कटाव तेज हो जाता है और जमीन के नीचे की तह में पानी का संग्रह कर रखने की जो शक्ति होती है, उस पर बुरा असर पड़ता है। इस शक्ति पर पूरी वर्षा से भी अधिक जमीन की उर्वरता का आधार होता है। इसके फलस्वरूप अधिकाधिक मात्रा में वर्षा को पानी जमीन परसे बह जाता है और बेकार चला जाता है। इस तरह पानी के व्यर्थ बह जाने की मात्रा कुछ वर्षों में ही आम तौर पर एक-दो फीसदी से बढ़कर दस से बीस फीसदी तक पहुंच जाती है, अर्थात् दस गुनी बढ़ जाती है। इससे जमीन की नमी, वर्षा और तापमान अर्थात् जलवायु पर भी असर पड़ता है। जब तापमान सम्बन्धी रिकॉर्ड भी कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाता, तब भी वास्तव में जलवाय वस्तुतः अधिकाधिक बिगड़ती जाती है। 'हलकी वर्षा बेकार जाती है भारी वर्षा विनाशक सिद्ध होती है और सामान्य हवाओं का आंधी जैसा असर होता है।'*

* 'महात्मा गांधी : पूर्णाहुति' चतुर्थ खण्ड से साभार।

आगामी अंक में जारी

□

हिमांशु जोशी : मेरे मित्र एवं मार्गदर्शक

✍ प्रमोद कुमार अग्रवाल

23 दिसम्बर, 2018 को हिमांशु जोशी 83 वर्ष की उम्र में चिरनिद्रा के आगोश में समा गए। यह समाचार सुनते ही हिंदी परिवार में शोक की लहर दौड़ गई। वे जनता के प्रिय कहानीकार थे। सन् 1955 में 21 वर्ष की उम्र में वे उत्तराखंड से काम की तलाश में दिल्ली आए। हिमांशु ने कुछ ही वर्षों के संघर्ष के बाद दिल्ली को अपना घर बना लिया। जैनेंद्र कुमार ने उनकी प्रथम कहानी 'दीप तो बुझ गया' को पढ़कर उनकी साहित्यिक प्रतिभा को परखा और उन्हें अपने साथ हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कार्यरत होने की सलाह दी। बस वही उनके परिवार के जीवकोपार्जन का एकमात्र साधन हो गया। उत्तराखंड की पृष्ठभूमि होने के बावजूद उनकी कहानियों में भारतीय जीवन का स्पंदन है। सन् 1968 से 1993 तक साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में उन्हें सहायक संपादक के पद पर रखकर संपादक मनोहर श्याम जोशी ने उनकी साहित्यिक प्रतिभा तथा पत्रकारिता-वैविध्य का संपूर्ण देश को परिचय करवाया। उनके उपन्यास 'कगार की आग', 'छाया मत छूना मन' को धारावाहिक रूप से साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित करके जोशीजी को लाखों पाठकों तक पहुंचाया। उन्होंने अपनी पचास वर्ष की साहित्य-यात्रा में प्रायः दो सौ कहानियां लिखीं। साथ-ही-साथ उन्होंने बाल-साहित्य, साक्षात्कार-साहित्य, यात्रा-वृत्तांत तथा कुछ कविताएं लिखीं। उन्होंने 'शांतिदूत' पत्रिका का सन् 1990 से 2006 तक संपादन तथा प्रकाशन किया, जो विदेशों में बड़ी ही लोकप्रिय थी। उनकी रचनाएं समस्त भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, नॉर्वेजियन, इटालियन, चेक, स्लाव, बुल्गारिया, चीनी, जापानी, कोरियन, बर्मी, नेपाली, बांग्ला आदि भाषाओं में रूपांतरित होकर सराही गईं, पर हिंदी साहित्य में गुटबंदी तथा पक्षपात के कारण उन्हें अनुकूल सम्मान न प्राप्त हो सका, जैसे उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार, भारत सरकार द्वारा पद्मश्री। पर वे स्वांतः सुखाय रचनाएं करते रहे। वे अपनी धरती, संस्कृति और स्मृतियों में चरित्रों को उठाते एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जिसमें समरसता हो, प्रेम हो तथा सहनशीलता हो।

मेरी उनसे प्रथम मुलाकात प्रायः 15 वर्ष पूर्व कोलकाता स्थित भारतीय भाषा परिषद् के एक कार्यक्रम में हुई। यह कार्यक्रम उनके साहित्यिक रचनाकर्म पर आधारित था।

मैं उनके सौम्य, विनम्र, मृदुभाषी, सरल, सहज, तथा राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता रहित व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हुआ। बस हम एक-दूसरे के मित्र हो गए। इसके बाद मैं कई बार उनसे मिला। वे मुझे दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल क्लब में ले जाते थे। वहां हम बैठकर साहित्यिक चर्चाएं करते थे। आई.ए.एस. से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् मैंने कहानियों के क्षेत्र में आगाज करने का संकल्प लिया, मेरा प्रथम कहानी-संग्रह 'यूकेलिप्टस' वांछित साहित्यिक मान्यता प्राप्त न कर सका। पर कहानी-विधा ही आजकल लोकप्रिय साहित्य-विधा है।

मैं कहानियां लिखता, उन्हें पढ़कर सुनाता तथा उनके सुझाव अमल में लाकर अपनी कहानियों में सुधार करता। मेरा 20 नवम्बर, 2018 को सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह 'गांव-गांव की कहानियां' में उनका आत्मनेपद पुरोवाक् मृत्यु के पूर्व उनका अंतिम आलेख है। उनका स्वास्थ्य दो वर्ष पूर्व से काफी बिगड़ना शुरू हो गया था तथा वे मुझे बोलकर वैश्विक साहित्य के लिए अपना स्तंभ लिखवाते, उसमें सुधार करते तथा अपने संग्रह से सामग्री उपलब्ध कराते। यह क्रम उनके स्वर्गवास तक जारी रहा तथा 'वैश्विक साहित्य' के माध्यम से हिंदी जगत् उनके सूर्यास्त काल की विचारधारा से परिचित होता रहा। ऐसी साहित्यिक प्रतिभा के प्रयाण के पश्चात् हिंदी कहानी साहित्य का कौन पथ-प्रदर्शन करेगा, जिसमें संपूर्ण भारत समाहित हो?

* 'साहित्य अमृत' जनवरी 2019 से साभार।

□

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा द्वारा 1–2 दिसम्बर, 2018 को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी की रपट

'गांधी 150' के अंतर्गत कार्यक्रमों की श्रृंखला में **आचार्य काकासाहेब कालेलकर के जन्मदिवस पर सन्निधि में दो दिन की राष्ट्रीय विचारगोष्ठी** आयोजित हुई। जिसका विषय था–**'व्यक्ति का व्यक्ति से संवाद : गांधीजी की दृष्टि में'।** सेमिनार के उद्घाटन-सत्र के मुख्य अतिथि **श्री जनार्दन द्विवेदी** (पूर्व महासचिव, अ.भा. कांग्रेस कमेटी) थे। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में सर्वप्रथम आचार्य काकासाहेब के योगदान का स्मरण कराया। श्री द्विवेदी ने गांधीजी की जनता के सभी वर्गों से साधी संवाद कला का विश्लेषण करते हुए कहा कि जननायक बनने के लिए ऐसी साधना अनिवार्य है। आज की परिस्थिति में यदि हम समाज में शांति और समृद्धि चाहते हैं तो ऐसे आदर्श पुरुषों का गढ़ना जरूरी है।

दिल्ली सरकार के पूर्व मन्त्री एवं दिल्ली गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष **श्री मंगतराम सिंघल** ने सन्निधि के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि अन्य सभी संस्थाओं को इससे सीख लेनी चाहिए। सत्र के अध्यक्ष गांधी स्मृति दर्शन समिति के निदेशक **डॉ. दीपंकर श्रीज्ञान** थे। उन्होंने सेमिनार के विषय की समसामयिकता पर बोलते हुए कहा–"आज समाज में संवादहीनता इसलिए है, क्योंकि हम असहिष्णु होते जा रहे हैं। दूसरों के विचारों को सुनना नहीं चाहते। गांधीजी समाज के हर वर्ग के लोगों के साथ एकात्मता स्थापित कर लेते हैं, जो संवाद के लिए पहली आवश्यकता है।

बीज भाषण प्रस्तुत करते हुए **श्री अरविन्द कुमार सिंह** (वरिष्ठ पत्रकार, राज्यसभा टी.वी.) ने अपनी शोधपरक पुस्तक 'भारतीय डाक का इतिहास' के संदर्भ से गांधीजी के समाज से जुड़ाव का सविस्तार वर्णन किया। गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के कार्यक्रम अधिकारी एवं पत्रकारिता के विद्वान **डॉ. वेदाभ्यास कुंडु** ने अपनी संस्था के कार्यों का परिचय देते हुए बताया कि विद्यार्थियों, प्राध्यापकों एवं पुलिस बल के साथ संवाद कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। जिससे उनके सम्पर्क में आने वालों के साथ मानवोचित व्यवहार हो सके।

विचार-गोष्ठी के तकनीकी प्रथम सत्र का विषय था–**'गांधीजी और उनकी संवाद कला'।** जिसकी अध्यक्षता केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष **श्री रामचन्द्र राही** ने की। उन्होंने गांधी, विनोबा और जयप्रकाश के जीवनप्रसंगों के माध्यम से गांधीविचार की संवादकला को स्पष्ट किया। सत्र के मुख्यवक्ता के रूप में वरिष्ठ पत्रकार **डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल** ने गांधीजी की संवादकला के विविध पक्षों को उजागर किया। उन्होंने कहा कि बीसवीं सदी के राजनेताओं में गांधीजी ही ऐसे नेता थे जिनका देश के हर वर्ग से सीधा सम्पर्क था। इसीलिए उनके उपवास की खबर से ही नौआखली और दिल्ली में कौमी दंगे शांत हो जाते थे। सत्र की अन्य वक्ता **श्रीमती शाश्वती** ने गांधीजी की संवादकला के सांस्कृतिक तथा सामाजिक पहलुओं पर प्रकाश डाला।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र का विषय था–**'मीडिया और भाषा'।** सत्र के मुख्यवक्ता वरिष्ठ पत्रकार **डॉ. प्रमोद कुमार** थे। उन्होंने भारतीय भाषाई पत्रकारिता में अंग्रेजी भाषा के बढ़ते दखल पर चिन्ता व्यक्त की। सत्र के अन्य वक्ता के रूप में **डॉ. राजदीप** (कार्यक्रम निदेशक, गांधी दर्शन) ने वर्तमान मीडिया में खबरों के चयन और भाषा की समीक्षा की। राज्यसभा टी.वी. के पत्रकार **श्री सगीर अहमद** ने

भोपाल पत्रकारिता विश्वविद्यालय के शोध के आधार पर कहा कि दिल्ली अखबारों में अनावश्यक रूप से अंग्रेजी शब्दों को ठूंसने से हिन्दी भाषा को कमजोर किया जा रहा है। सत्र के अध्यक्ष वरिष्ठ पत्रकार **श्री मनोहर सिंह** (सम्पादक, भाषा, पी.टी.आई.) ने प्रस्तुत तीनों निबन्धों की विवेचना प्रस्तुत की। उन्होंने पत्रकारों के प्रशिक्षण पर बल दिया।

2 दिसम्बर, 2018 को दोपहर भोजन के बाद आयोजित तृतीय सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ पत्रकार **श्री उमेश चतुर्वेदी** (आकाशवाणी) ने की। जिसका विषय था–**'डिजीटल भारत'।** सामूहिक चर्चा वाले इस सत्र का प्रारम्भ **श्री संजीव सिन्हा** (सम्पादक, प्रवक्ता डॉट कॉम) ने किया। उन्होंने पिछले दशकों में भारत में डिजीटल आंदोलन की सफलता के लाभों को बताया। वहीं **श्री अतुल अग्रवाल** (सम्पादक, डायलाग इंडिया) ने डिजीटल प्रक्रिया में भारतीयकरण करने की आवश्यकता पर बल दिया। दोनों पक्ष-विपक्ष पर डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल सहित अनेक प्रतिभागियों ने चर्चा में भाग लिया। सत्र के अध्यक्ष श्री उमेश चतुर्वेदी ने वर्तमान परिस्थिति में डिजीटल होने को आवश्यक बताया।

राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी के समापन समारोह की अध्यक्षता **प्रो. गोविन्द सिंह** (अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय) ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि भारतीय पत्रकारिता संस्थान, भारत सरकार के कुलपति एवं महानिदेशक **प्रो. के.जी. सुरेश** थे। उन्होंने गांधीजी की संवादकला के गूढ़ रहस्य को तार्किक दृष्टि से समझाया। उनके अनुसार आजकल जितने भी अध्यात्म, धर्म या सामाजिक क्षेत्र के बड़े लोग हैं उनमें गांधीजी जितनी प्रामाणिकता का अभाव है। गांधीजी ने अपनी करनी और कथनी की एकता को आध्यात्मिक स्तर तक प्रमाणित किया था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत में अपनी मृत्यु तक अपने त्याग और तपस्या से दुनिया के सामने आदर्शमय व्यक्तित्व को साकार करके दिखाया। प्रो. सुरेश ने बताया कि मार्च में उनका संस्थान भी इसी विषय पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। उसमें गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा का सहयोग अपेक्षित है। उन्होंने प्रत्येक पत्रकारिता एवं जनसम्पर्क विद्या संस्थान में गांधीजी की संवादकला (जनसम्पर्क) की तकनीक पर आधारित पाठ्यक्रम को अनिवार्य रूप से पढ़ाने पर बल दिया।

सत्र के मुख्यवक्ता **श्री देबव्रत घोष** (वरिष्ठ पत्रकार एवं सम्पादक, फर्स्ट पोस्ट) ने बताया कि किस प्रकार नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्रों में पत्रकारिता करते हुए गांधीजी की पत्रकारिता की दीक्षा ने उनका काम आसान कर दिया था।

सत्र के अध्यक्ष **प्रो. गोविन्द सिंह** ने सन्निधि के साथ अपने पुराने अनुभवों को साझा किया। उन्होंने श्री सुरेश और श्री घोष के विचारों का समर्थन करते हुए प्रत्येक पत्रकारिता संस्थान द्वारा गांधीजी के संवादकला (Gandhiji and his Communication Skill) पर पाठ्यक्रम को चलाने पर बल दिया।

–प्रस्तुति : **प्रो. रमेश भारद्वाज**

□

सुधी पाठकों को **मंगल प्रभात** परिवार की ओर
नववर्ष **2019**
की हार्दिक शुभकामनाएँ

खादी आश्रम, दिल्ली
प्र.का. : 32-ई, कमला नगर, दिल्ली-110007
(प्रधान कार्यालय : दिल्ली)

KHADI ASHRAM, DELHI
H.O. : 32-E, KAMLA NAGAR, DELHI-110007
(HEAD OFFICE : DELHI)

गाँधी जयन्ती के शुभ अवसर पर

प्रिय खादी जनों/महिलाओं,

डब्बल सूत की वाटिक व बैंगलोरी साड़ियाँ

काश्मीर का शुद्ध सफेद शहद व केसर

राजस्थान की देसी गाय का शुद्ध व ताज़ा घी

बिना चर्बी नहाने का ग्लैसरीन युक्त साबुन

यह काम बढ़ रहा है, क्योंकि इसमें आपका सहयोग मिल रहा है। 20% छूट की सूचना हम हर वर्ष आपके घर तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

खादी वस्त्रों के पहनने का लाभ, शारीरिक बीमारियों से छुटकारा। खरीदने से पूर्व यह निश्चित कर लें कि खरीदा कपड़ा, हाथकता, हाथबुना ही है। क्योंकि सरकार की नई नीति के अनुसार कुछ संस्थानों के भंडार मिक्स कपड़ा बेच रहे हैं। वह आपके लिये फायदेमंद नहीं है। न उतना गुणकारी व शरीर के लिए लाभदायक है।

भारत सरकार की मौजूदा नीति के अनुसार कुछ निजी कार्य करने वालों को भी खादी बिक्री करने का अधिकार दिया जा रहा है। यदि वह लोग हाथ कती, हाथ बुनी खादी की बिक्री करें तो ठीक अन्यथा खादी के नाम पर मिल वस्त्रों की बिक्री करेंगे तो खरीदने वालों को हाथ कती, हाथ बुनी खादी के गुणात्मिक गुण नहीं मिल पायेंगे। और न हाथ से काम करने वालों को रोजी रोटी।

हम आपको इस विश्वास के साथ अपनी निम्न शाखाओं में 20% छूट के साथ आमन्त्रित कर रहे हैं कि इनमें मिलने वाले खादी वस्त्र 100% हाथ कते, हाथ बुने ही होंगे।

धन्यवाद सहित!

शाखायें दिल्ली में–

1. 32-ई, कमला नगर, दिल्ली-110007, फोन : 23848574, वस्त्रागार : 27245349
2. सी-9, राणा प्रताप बाग (बस स्टैण्ड के पास) दिल्ली-110007, फोन : 27245349 पी.पी.
3. अनाज मण्डी, मंगल मार्किट, शाहदरा, दिल्ली-110032, फोन : 9968200164
4. 185-11/सी, मेन रोड मौजपुर, दिल्ली, फोन : 9868354440
5. बी-1/ए, मेन बाजार, भजनपुरा, दिल्ली, फोन : 9958515186
6. पॉकेट-डी, 14, डी.डी.ए., मार्किट, दुकान नं.-12, सेक्टर-8, रोहिणी, नई दिल्ली, फोन : 9999291084
7. बी-9/7, मदर डेयरी के सामने वाली सड़क पर सेक्टर-18, रोहिणी, नई दिल्ली (पुराने भण्डार के सामने), फोन : 9971971467

(नीरज वत्स)
केंद्र व्यवस्थापक, दिल्ली
9716284078

(योगेन्द्र नाथ घई)
मंत्री
011.27245349

डाक रजि. संख्या डी.एल.(सी.)-01/1242/2018-20
डाक से भेजने की तारीख 5-6 जनवरी, 2019 Postal R.No.DL(C)-01/1242/2018-20
प्रकाशन की तारीख 3 जनवरी, 2019 मंगल प्रभात मासिक आर.एन.आई.-813/57

प्रिय पाठक महोदय/महोदया,

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, राजघाट, नई दिल्ली की मुखपत्रिका **'मंगल प्रभात'** विगत 68 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। इस मासिक पत्रिका का 'सर्वोदय पत्रकारिता के इतिहास' में विशिष्ट स्थान है। संस्थापक संपादक आचार्य काकासाहेब कालेलकर की दृष्टि से गांधी विचार के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन की दिशा में यह पत्रिका सतत क्रियाशील है।

आपकी सेवा में 'मंगल प्रभात' का प्रत्येक अंक भेजा जाता है। विश्वास है आपको यह वैचारिक रूप से पसंद आता होगा।

'गांधी 150' में 'मंगल प्रभात' के विशेष अंक प्रकाशित करने की हमारी योजना है। जिससे आर्थिक भार बढ़ेगा। अतः हमारा आपसे अनुरोध है कि निम्नलिखित दरों के अनुसार यथासंभव सदस्य बनने/बनवाने अथवा विज्ञापन देने/दिलवाने का कष्ट करें–

ग्राहक शुल्क
वार्षिक : ₹ 100/-, पंचवर्षीय : ₹ 500/-, 10 वर्षों के लिए : ₹ 1000/-
विशेष : मंगल प्रभात के विशेषांक की विज्ञापन दर
कवर पृष्ठ-4 = ₹ 50,000/-
कवर पृष्ठ-3 = ₹ 30,000/-
पूरा पृष्ठ = ₹ 10,000/-
आधा पृष्ठ = ₹ 5,000/-

विश्वास है आप इस राष्ट्रीय कार्य में अपना सहयोग देने का कष्ट करेंगे।

भवदीय,

प्रो. रमेश भारद्वाज
संपादक
मंगल प्रभात

विशेष : मंगल प्रभात का ई-पेपर संस्था की वेबसाईट www.ghsssannidhi.org पर उपलब्ध है।

प्रकाशक एवं मुद्रक **कुसुम शाह** द्वारा **गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा**, 1, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली-2 के लिए प्रकाशित तथा **आदर्श प्रेस**, 2023, कूचा चेलान, दरिया गंज, नई दिल्ली-2 से मुद्रित। *संपादक* : **प्रो. रमेश भारद्वाज**